आत्मधर्म

मासिक : वर्ष-१८ * अंक-१२ * अगस्त-२०२४

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका

१११ वाँ

जन्मजयंती महोत्सव

ता. १७-८-२०२४, शनिवार से
ता. २१-८-२०२४, बुधवार

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● हे योगीश्वर! निश्चयनयकर विचारा जावे तो यह जीव न तो उत्पन्न होता है, न मरता है और न बंध-मोक्षको करता है, अर्थात् शुद्धनिश्चयनयसे, बंध-मोक्षसे रहित है ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।५५। (श्री योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश, अधि-१, गाथा-६८)

● हम भी श्री जिनेन्द्रदेवके समान ज्ञानगोचर हैं। हम भी स्वानुभवगोचर हैं। हम भी परमानन्द स्वभावके धारी है। हम अपने आनंदमयीस्वरूपमें मगन हैं। हम ही मुक्तिस्वरूप हैं, हम ही सिद्धस्वभावके धारी है। इस तरह साधकको एक द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा अपने आत्माके स्वरूपका मनन करना चाहिये।५६।

(श्री तारणस्वामी, ममलपाहुड, भाग-१, पृष्ठ-३२१)

● जो जिन भगवान हैं, वही मैं हूँ—यही सिद्धान्तका सार समझो। इसे समझकर हे योगीजनों! मायाचारको छोड़ो।५७। (श्री योगीन्द्रदेव, योगसार, गाथा-२१)

● हे भव्य! मैं तुझे एक वस्तु समझाता हूँ, अत्यन्त प्यारसे उसे तू सुन और समझ—यह आत्मा स्वयं नित्य सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है। उसे तू कभी भूल मत।५८।

(श्री नेमीश्वर-वचनामृत शतक, श्लोक-९)

● भावसे भावोंकी शुद्धि होती है, वह भाव यह है कि यह अपना आत्मा निश्चयसे परमात्मरूप निर्मल अपने स्वभावमें रहनेवाला है। यही भाव भव्यजीवोंके लिये शरण है। जो इस आत्मानुभवरूपी भावकी आराधना करते हैं वे निर्वाणको जाते है।५९।

(श्री तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार, श्लोक-९०७)

● जीवद्रव्य क्वचित् सद्गुणों सहित विलसता है, दिखाई देता है, क्वचित् अशुद्धरूप गुणों सहित विलसता है, क्वचित् सहज पर्याय सहित विलसता है और क्वचित् अशुद्ध पर्यायों सहित विलसता है। इन सबसे सहित होने पर भी जो इन सबसे रहित है ऐसे इस जीवतत्त्वको मैं सकल अर्थकी सिद्धिके लिये सदा नमता हूँ, भाता हूँ।६०।

(श्री पद्मप्रभमलधारिदेव, नियमसार टीका, श्लोक-२६)

● अनुभूति स्वरूप भगवान आत्मा बालगोपाल सबको अनुभवमें सदा स्वयं ही आने पर भी अनादि बन्धके वश होकर पर (द्रव्यो)के साथ एकत्वके निश्चयसे मूढ़-अज्ञानीजनको 'जो यह अनुभूति है वही मैं हूँ' ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता।

(श्री अमृतचंद्राचार्य, समयसार, गाथा-१८)

वर्ष-18
अंक-12

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2080
August
A.D. 2024

धन्य अवतार, प्रशममूर्ति, भगवती पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

ज्ञान : हे बहिन! आप कहाँ जा रही हो?

साधना : मैं तो हमारे उपकारी बहिनश्री चंपाबेनकी जन्मजयंती मनाने सोनगढ जा रही हूँ।

ज्ञान : सोनगढ़ जानेकी क्या आवश्यकता है, जन्मजयंति तो यहाँ पर भी मनाई जा सकती है।

वैराग्य : हाँ, बात तो सोचने योग्य है, लेकिन....

साधना : पूज्य धर्ममाताने सोनगढ़में स्थायी रहकर वहाँकी भूमिको पवित्र की है इसलिये उनकी जन्मजयंति भी वहाँ पर ही मनाना चाहिये न!

वैराग्य : बहिन साधना! पूज्य बहिनश्री चंपाबेन कैसी थी? उनके जीवन सम्बन्धित जानकारी हमें सुनाओ।

साधना : हां, क्यों नहीं! पूज्य बहिनश्रीका जन्म वढ़वाण गाँवमें अषाढ़ कृष्ण द्वितीयाके दिन वि.सं. १९७०को हुआ था। इस मंगल दिन पिताजी जेठाभाई और माता तेजबाके घर मंगल बधाई हुई थी। तो चलो हम भी यह मंगल दिनका स्मरण करके उनकी बधाई करें।

भक्ति

(राग : वैशाख सुद बीजने वार)

श्रावण वद बीज छे आज, तेजबा घेर कुंवरी पधारीया...
गुंज्यां दुदुंभीना नाद, तेजबा घेर कुंवरी पधारीया...

शुद्ध आतमना नाद गुंज्या छे, भक्तो उतर्या भव पार....
तेजबा घेर कुंवरी पधारीया...
श्रावण वद बीज छे आज, तेजबा घेर कुंवरी पधारीया...

* * *

साधना : जब बाल महात्माकी उम्र साढ़े तीन सालकी थी तब उनकी माता तेजबाका देहविलय हो गया था। और वे अपनी बड़ी बहिन समरतबेनके पास करांचीमें रहेनेको गये थे। वे बचपनसे ही दयावान और शांत प्रकृतिके थे। करांचीमें पानीके नल कोमन थे। जब वे पानी भरने जाते तब उनका नंबर आने पर भी अन्यको पानी भरने देती थी और कहती थी कि "आप प्रथम भर लीजिये, बादमें मैं भर लूंगी।"

वे बचपनसे ही वैरागी थी और सतीओंके प्रति उनका लगाव अधिक था। शालामें प्रथम आने पर उनको पुरस्कारमें 'सती मंडल' नामका पुस्तक भेटमें मिला था और वे सखीओंके साथ सतीओंका चरित्रके रास-गरबा गाती थीं। तो चलो, हम भी देख ले कि वे कैसे वैराग्यरस भरपूर गरबा करवाती थीं....

भक्ति

आवो आवो! सौ सतीका वैराग्य सुननेको आवो....
आवो आवो! सौ सीता सतीनो वैराग्य सुनने आवो...
रामचंद्रजीनो साथ देवाने, कर्यो वनमां वास,
रावण द्वारा हरण थयुं पण, शीलमां रह्यां सुदृढ़...आवो....
पाप तणो उदय आव्यो ने, तज्यो रामे साथ,
बळभद्रने संदेश मोकल्यो 'धर्म न छोडता नाथ'...आवो...
अग्नि परीक्षा पसार करीने, चाल्या वन मोझार,
पंच अणुव्रत ग्रहण करीने, थया अर्जिका महान...आवो...

* * *

साधना : उनको ऐसा लगता था कि यहाँ करांचीमें धर्मके संस्कारका सिंचन नहीं हो रहा है उनको संतोंका विरह लगता था। इसलिये मन परदेशमें अर्थात् कि करांचीमें

लगता नहीं था। इस कारण सामान्यरूपसे कोमल प्रकृति होने पर भी अकेले ही करांचीसे वढ़वाण जानेके लिये चल दिये....

भक्ति

(राग : मारा माताजीने लाग्यो छे...)

व्हाला धर्मात्माने लाग्यो छे सत् संतोनो रंग....व्हाला...
ए तो आवी पहोंच्यो...ए तो आवी पहोंच्यां,
वीरपुर ज्यां संतोनो संग....
व्हाला धर्मात्माने लाग्यो छे सत् संतोनो रंग....व्हाला...

* * *

साधना : भगवती माता वढवाणमें अपने वडीलबंधु वृजलालभाईके साथ रहती थीं। वि.सं. १९८५में अर्थात् कि उनकी उम्र १४-१५ वर्षकी होगी तब वढ़वाणमें पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रथम सत्-समागम प्राप्त हुआ। पश्चात् वे पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनमें जो आता था वे अक्षरशः लिख लेती थी और उसका गहन अभ्यास करती थी। ऐसा करते करते स्वाध्याय, चिंतन, मनन वृद्धिगत होता गया और पश्चात् १९ वर्षकी उम्रमें वांकानेरमें सं. १९८९ फाल्गुन कृष्ण-१०के मंगल दिन दोपहरमें लगभग साढ़े तीन बजे सम्यग्दर्शन प्राप्त किया।

भक्ति

(राग : भावे भजो भावे भजो...)

भावे भज्यो...भावे भज्यो...आतम राया, सम्यग्दर्शन पाया जी पाया...
शुद्ध आतमको निज में बसाया, भव भ्रमणका अंत है आया.
कहान गुरु..कहान गुरुको बताया...सम्यग्दर्शन पाया जी पाया...
भावे भज्यो...भावे भज्यो...आतम राया, सम्यग्दर्शन पायाजी पाया...

* * *

साधना : सम्यग्दर्शन होनेके बाद आत्मानुभवी उन संतने वडील बंधु हिंमतभाईको पत्रमें लिखा कि : 'यह आत्माको परिभ्रमणका किनारा आ गया है' और पूज्य गुरुदेवश्रीको

कहा कि 'साहेब! आपके प्रतापसे मुझे आत्मसाक्षात्कार हुआ है'। कृपालु गुरुदेवश्रीने पूज्य बहिनश्रीको पूछा 'बहिन! आपको आत्मसाक्षात्कार होने पर क्या हुआ?' तब पूज्य बहिनश्रीने कहा 'आत्मा अकर्ता हो गया, कर्तृत्व छूट गया और ज्ञाता हुआ।' मात्र अल्प प्रश्नोंके उत्तरसे ही ज्ञानसागर गुरुदेवश्रीको संतोष हो गया और उनके मुखसे सहज ही 'आत्मा कहाँ स्त्री या पुरुष है? आत्मा कहाँ बालक या वृद्ध है? ऐसे उद्गार निकले।

तत्पश्चात् अल्प ही समयमें संवत १९९१में पूज्य गुरुदेवश्रीने संप्रदाय परिवर्तन करके सोनगढ़में निवास किया। शासनप्रभावक गुरुदेवश्रीके प्रवचन आदिका लाभ लेने हेतु पूज्य बहिनश्री भी सोनगढ़में स्थायी हुई। समयसारमर्मज्ञ पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन सुनकर पूज्य बहिनश्रीको ऐसा हुआ करता था कि अहा! गुरुदेवश्रीके प्रवचन कितने अद्भुत हैं और उसमें प्रतिदिन नये-नये न्याय और स्पष्टीकरण आते थे...

भक्ति

(राग : मारा घर आंगणियामां)

रूडा सुवर्णपुरीमां कहान गुरुजी पधार्या रे!...
रूडा सुवर्णपुरीमां कहान गुरुजी पधार्या रे!...
एना प्रवचनमां शुद्ध आतमनुं ज्ञान,
एवा अद्भुत न्यायोनुं रसपान करावे रे!...
रूडा सुवर्णपुरीमां कहान गुरुजी पधार्या रे!...

* * *

साधना : विक्रम संवत १९९३ के चैत्र कृष्ण अष्टमीकी तिथिको २३ वर्षकी उम्रमें ध्यानमेंसे बाहर आने पर पूज्य बहिनश्रीको मतिज्ञानकी शुद्धताके फल स्वरूप पूर्वभवका स्मरण आया...जातिस्मरण ज्ञान हुआ।

जातिस्मरण ज्ञानमें स्वयंके तथा गुरुदेवश्रीके पूर्वभवोंका ज्ञान आया था।

पूर्व भवमें वे सीमंधर भगवानके पास थे। सीमंधर भगवानकी वाणीमें, पूज्य गुरुदेवश्रीका जीव चार भव पश्चात् धातकीखंडमें भावी तीर्थंकर होंगे और स्वयं (-पूज्य बहिनश्री) उनके देवेन्द्रकीर्ति नामके गणधर होंगे आदि बातें उनके

जातिस्मरणज्ञानमें आयी थीं। यह सभी बातें हम कलकी बात याद करते हैं उसी प्रकार याद आई थीं।

भक्ति

(राग : निर्ग्रंथोंका मार्ग)

जातिस्मरण ज्ञान....जातिस्मरण ज्ञान
हमको पूर्व भव बतलाता है...जातिस्मरण ज्ञान...
बेनश्री मेरे...निज ध्यान करते थे.
तब पूर्वभव स्मरण आया, गुरुदेवश्री मेरे...गुरुदेवश्री मेरे...
अब तीर्थंकर होनेवाले है....गुरुदेवश्री मेरे...गुरुदेवश्री मेरे...
अब तीर्थंकर होनेवाले है...गुरुदेवश्री मेरे...गुरुदेवश्री मेरे...
जातिस्मरण ज्ञान..जातिस्मरण ज्ञान
बहिनश्री को आया है जातिस्मरण ज्ञान,
बहनश्री मेरी...बहनश्री मेरी अब गणधर पद लेनेवाली हैं.
जातिस्मरण ज्ञान, जातिस्मरण ज्ञान,
भगवती मातको आया है जातिस्मरण ज्ञान....

* * *

साधना : अपने स्वाध्यायमंदिरके गोखलामें जो समयसारजी विराजमान है वह स्वाध्यायमंदिरके उद्घाटन प्रसंग पर पूज्य भगवतीमाताने ही विराजमान किया था और पूज्य गुरुदेवश्रीने उन्हें 'भगवती' ऐसा बहुमानसूचक विशेषण दिया था। उनका ज्ञान और वैराग्य ऐसा था कि कृपासागर पूज्य गुरुदेवश्रीने 'आराधनाकी देवी' जैसी उपमा उन्हें दी थी।

वैराग्य : बेन साधना! पश्चात् क्या हुआ ?

साधना : भाई वैराग्य! वि.सं. २०३७, कार्तिक कृष्ण सप्तमीके दिन भावि तीर्थाधिनाथ पूज्य गुरुदेवश्रीने पूज्य भगवती माता और उनके भक्तोंको विरहमें छोड़कर वैमानिक स्वर्गमें प्रयाण किया और उनका हृदय पुकार उठा....

भक्ति

(राग : तुम बिन कौन सुनावे)

गुरुवर विरह लाग्यो रे! गुरुवर विरह लाग्यो रे!
ज्ञाननी वातो कोण सुणावे! ज्ञाननी वातो कोण सुणावे!
याद आवे सत्संग रे! गुरुवर विरह लाग्यो रे!
गुरुवर विरह लाग्यो रे!

* * *

साधना : महा उपकारी पूज्य गुरुदेवश्रीके स्वर्गगमन पश्चात् भक्तोंको इस संसारके तापसे बचानेवाली एक पूज्य बहिनश्रीकी शीतल छाया ही थी। पश्चात् वि.सं. २०४१, फाल्गुन शुक्ल सप्तमीके शुभ दिन उनकी निश्रामें पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयकी प्रतिष्ठा हुई, जिसमें गुरुदेवश्री और बहिनश्रीके वचनामृत संगेमरमर पर उत्कीर्ण किये गये हैं। गुरुदेवश्रीकी विदायके बाद दस वर्ष तक सभी मुमुक्षुओंको उत्पन्न सर्व प्रश्नोंका समाधान सरल, सचोट और हृदयस्पर्शी भाषामें वे करती थी।

वैराग्य : अहा! हमारा महाभाग्य है कि ऐसे ज्ञानीओंका सत्संग हमें प्राप्त हुआ।

साधना : किन्तु वि.सं. २०४६ वैशाख कृष्ण तृतीयाको इस भरतक्षेत्रके जीवोंका पुण्य कम हुआ और भाविके गणधर ऐसी पूज्य भगवती माताका विरह हुआ... उन्होंने स्वर्गगमन किया। उस दिन मानों मुमुक्षुओंके उपर मानों आसमान गिर पड़ा और सभी मुमुक्षुओंके हृदयमें एक ही भाव था....

भक्ति

(राग : गुरु तारो सांभरशे सथवारो)

माता तारी विदाय छे दुःखकारी, माता तारो विहार छे दुःखकर....
माता तारी विदाय छे दुःखकारी....
दर्शन-वाणी मळे नव तारा, न मळे ज्ञान-वैराग्यनी धारा,
माता तारी विदाय छे दुःखकारी, माता तारी विदाय छे दुःखकारी....

* * *

(शेष देखे पृष्ठ २४ पर)

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-३५ (गाथा-३१)

निज उपकारमें लग जाओं

यह श्री इष्टोपदेश शास्त्र है, उसकी ३०वीं गाथा चल रही है।

धर्मी जीव स्वयंके अतीन्द्रिय आनंदस्वरूप शुद्ध आत्माकी प्रतीति-ज्ञान और अनुभवके कारण अब वह परपदार्थको भोगनेकी रुचि करते नहीं है। धर्मी ऐसा सोचते है कि अनंतकालमें भोग तो मैंने अनंतबार भोगे। अज्ञानदशामें स्वयंकी वस्तुको भूलकर मैं दाल-चावल-लड्डु आदि तथा स्त्रीके भोग भोगे और छोड़ दिये। लेकिन अब निज ज्ञानानंद शुद्ध चैतन्यका भान होने पर अनंतकालमें भोगे हुए उच्छिष्ट भोगोंमें अब मुझे रुचि नहीं है।

अब यहाँ ३१वीं गाथाके शीर्षकमें शिष्य प्रश्न करता है कि जीव द्वारा पुद्गल कर्म किस प्रकार बंधको प्राप्त हो जाता है? उसका उत्तर पूज्यपादस्वामी ३१वीं गाथामें देते हैं।

कर्म कर्महिताबन्धि जीवो जीवहितस्पृहः।
स्व-स्वप्रभावभूयस्त्वे स्वार्थं को वा न वाञ्छति॥३१॥
कर्म कर्मनुं हित चहे, जीव जीवनो स्वार्थ,
स्व प्रभावनी वृद्धिमां, कोण न चाहे स्वार्थ? ३१.

'कर्म कर्मका हित चाहता है' अर्थात् अज्ञानी जीव कर्मके उदयको वश होकर स्वयंके शुद्ध, पूर्ण स्वरूपकी सावधानी-आदर छोड़कर कर्मके निमित्तका आदर-सत्कार करता है और उसमें राग-द्वेष करता है। उसे वास्तवमें अज्ञानी कर्मका उपकार करता है ऐसा कहा जाता है। क्योंकि अज्ञानीको राग-द्वेषसे कर्मबंध होता है। इसलिये कर्मका हित होता है। कर्म तो जड़ है तो क्या हितकी चाह करता है? किन्तु भाषा ऐसी कही है कि कर्मका जो आदर करता है उसे कर्म बंधते है और कर्मकी वृद्धि होती है तो कर्मका उसमें हित होता है।

भगवान आत्मा शुद्ध पूर्णानंद निर्वाणनाथ परमात्मा है। उसे प्रभु ! तू दूर मत देखो तेरी समीप ही है। स्वयंके परमेश्वरकी ईश्वरता न देखते जो परमें ईश्वरता मानता है वह तो कर्मका हित करता है और स्वयंका अहित करता है।

संयत चरे शुभभावमें, वह श्रमण है वश अन्यके। परमागम
अतएव आवश्यकस्वरूप न कर्म होता है उसे॥१४४॥ श्री नियमसार

मैं कौन हूँ, मेरी उत्पत्ति कहाँसे हुई, मेरा स्वरूप क्या है ? इस प्रकार जिसे स्वयंके अस्तित्वका भान नहीं वह परमें तो कहीं स्वयंका अस्तित्व मानता ही है। कर्मके निमित्तके साथमें जो राग-द्वेष, पुण्य-पापके भाव होते है वह ही मेरे है। इस प्रकार अज्ञानी स्वयंका हित छोड़कर कर्मका हित करते है अर्थात् कि कर्म बंध करते है। अज्ञानीको कर्मके उदयसे मिले हुए संयोगोंमें मोह है इसलिये नवीन कर्मबंध होता है इसलिये वह कर्मका उपकार करता है ऐसा कहा जाता है।

चैतन्य परमेश्वरका स्वभाव 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' है, उस स्वरूपका सत्कार, आश्रय, अवलम्बन, सावधानी छोड़कर कर्मके उदयमें सत्कार, आश्रय, अवलम्बन साधनेकी इच्छा करता है वह अज्ञानी कर्मका हित करता है और ज्ञानी स्वयं शुद्ध चैतन्य स्वभावका आदर, सत्कार, अवलम्बन करके स्वयंका हित करता है।

भगवान आत्मा अज्ञानवश राग-द्वेष करता है उसका निमित्त प्राप्त कर्मका पुद्गल स्वयं आकर अपने आप बंध जाता है और पूर्व कर्मका उदयका निमित्त पाकर जीव स्वयं विकारी भावरूप परिणमित होता है। इस प्रकार आत्माके मोह और विकारका निमित्त पाकर पौद्गलिक कर्म अपने आप बंध जाता है और पौद्गलिक कर्मका निमित्त पाकर स्वयंके शुद्ध स्वरूपको छोड़कर मिथ्यात्व और राग-द्वेषरूप परिणमित होकर पुण्यमें हितकर लगना, भोगमें सुख, स्त्रीमें आनंद और कीर्तिमें ठीक है ऐसी मिथ्याभ्रमणा करता है। वह जीवने किये हुए जीवके भाव है अर्थात् कि चेतनात्मक परिणाम है, उसमें पूर्वसंचित कर्मका उदय निमित्तमात्र है।

यहाँ दृष्टांत देकर कहते है कि जिसका प्रभाव वृद्धिगत हो जाय वह अन्य पर स्वयंका प्रभाव डालकर क्यों अपने स्वार्थको न साधेगा? साधेगा ही। उसी प्रकार कर्मका प्रभाव वृद्धिगत होते कर्म स्वयंका हित करता है और आत्माका प्रभाव वृद्धिगत होने पर आत्मा स्वयंका हित करता है।

अज्ञानी जीव मोह और अविद्याके वश परका उपकार करता है। शरीरका उपकार करता है, स्त्री, पुत्र, परिवारका उपकार, देशका उपकार करे लेकिन उसमें स्वयंका अपकार होता है वह अज्ञानी देखता नहीं है। इसलिये यहाँ कहा कि कर्म कर्मका हित करता है। कर्म तो वास्तवमें जड़ है। वह स्वयंका हित नहीं चाहता लेकिन अज्ञानी कर्मके वश होकर कर्मका हित करता है।

जो जोड़ता चित द्रव्य-गुण-पर्यायचिन्तनमें अरे!
रे मोह-विरहित-श्रमण कहते अन्यके वश ही उसे ॥१४५॥

जो स्वयंके स्वभावकी सावधानी करता नहीं है उसे परमें सावधानी हुए बिना रहती नहीं है। चैतन्यमूर्ति ज्ञायक आत्माको छोड़कर पुण्य और रागमें स्वयंका हित मानकर उसमें सावधानी करता है और पुण्यसे मिले संयोगोंसे स्वयंको लाभ मानता है और पापसे मिले हुए संयोगोंसे स्वयंको प्रतिकूलता मानता है वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है।

बाह्यकी प्रतिकूलतासे जीवका अहित होता हो तो नरकमें अनंती प्रतिकूलताओंके मध्यमें जीवका हित कहाँसे होगा ? सम्यग्दर्शन कहाँसे होगा ? सातवीं नरककी वेदना तो ऐसी है कि केवली जानते है और नारकी भोगते है। युवा राजकुमार हो, भयंकर लड़ाई लड़ रहा हो और मेरा राज्य किसी भी प्रकारसे पुनः प्राप्त करूँ ऐसे अभिमानपूर्वक लड़कर मरकर सातवीं नरकमें जाय वहाँ अति तीव्र वेदनाके मध्यमें ऐसा विचार आये कि अरे ! यह वेदना ! इससे मुक्ति है कि नहीं ? ऐसा विचार करते करते अचानक शरीर और रागसे भिन्न स्वयंके आत्माका अनुभव कर लेता है। बाह्यकी कोई प्रतिकूलता उसे बाधित नहीं होती है।

यहाँ एक रात्रिको दर्द हो तो रात बहुत लम्बी लगती है। दर्द सहन नहीं होता है तो नरकमें तो उससे भी अनंतगुना दुःख है। उसके मध्यमें भी भेदज्ञान हो सकता है। बाह्यकी आकुलता-प्रतिकूलता आत्माको क्या कर सकती है ?

स्वयंकी परमेश्वरताका स्वीकार न करके परमें अधिकता मानता है इसलिये ही जीवको दुःख सहन करने पड़ते है। यह जीव अनंतबार त्यागी हुआ, मुनि हुआ लेकिन ''मुनिव्रतधार अनंत बैर ग्रैवेयक उपजायो, पै निज आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।'' आत्माके भान बिना एक अंशमात्र भी आनंद बाह्यमें नहीं है और आत्माका भान करे तो सातवीं नरककी पीड़ाके बीच भी अतीन्द्रिय आनंदका अनुभव कर लेता है। दौलतरामजी रचित पद्यमें आता है कि ''बाहिर नारकीकृत दुःख भोगत, अंतर सुखरस गटागटी'' और मिथ्यादृष्टि करोड़पति हो, आबरूवाला हो लेकिन भीतरमें होली जल रही हो इसलिये कहते है कि भाई ! संयोग सुख-दुःखका कारण नहीं है।

यहाँ कहते हैं कि कभी जीव बलवान होता है और कभी कर्म बलवान होता है। उसका अर्थ ऐसा है कि कभी जीव स्वयंकी शक्तिका बहुमान छोड़कर कर्मके उदयसे हुए पुण्य-पाप भावको बहुमान देता है उसमें वास्तवमें कर्मका बहुमान होता है इसलिये कर्म बलवान है ऐसा कहा जाता है और कभी जीव स्वयंके पुरुषार्थसे स्वभावकी जागृति करके केवलज्ञान लेनेकी तैयारी करे वह जीवका बलवानपना है। उसमें आत्माका हित होता है।

(क्रमशः) ✻

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

सम्यग्दृष्टिका सारा ही ज्ञान सम्यक् है। वह मोक्षमार्गरूप निजप्रयोजनकी साधना करता है।

पुनश्च ऐसे सम्यक्त्वके होते ही, जो ज्ञान (पूर्वमें) पाँच इन्द्रिय तथा छठे मन द्वारा क्षयोपशमरूप मिथ्यात्वदशामें कुमति-कुश्रुतरूप हो रहा था वही ज्ञान अब मति-श्रुतरूप सम्यक्ज्ञान हुआ। सम्यग्दृष्टि जो कुछ जाने वह सारा जानना सम्यग्ज्ञानरूप है। वह (सम्यग्दृष्टि) यदि कदाचित् घटपटादि पदार्थोंको अयथार्थ भी जाने तो वह आवरणजनित उदयका अज्ञानभाव है; तथा क्षयोपशमरूप प्रगट ज्ञान है वह तो सारा सम्यग्ज्ञान ही है, क्योंकि जानते समय पदार्थोंके प्रति विपरीतरूप अभिगमको प्राप्त नहीं होता है।' (मो.मा.प्र.पृष्ठ ३४३-३४४)

देखो, समकितीका सम्यग्ज्ञान। जहाँ शुद्धात्मश्रद्धानरूप निश्चयसम्यक्त्व हुआ वहाँ सारा ज्ञान भी स्व-परकी भिन्नताकी यथार्थ साधना करता हुआ सम्यक्रूप परिणमित हुआ, अतः ज्ञानीका सारा ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान हुआ। कदाचित् क्षयोपशम दोषसे बाहरके अप्रयोजनभूत कोई पदार्थ (घट-पट, रस्सी इत्यादि) अयथार्थ जाननेमें आ जाय तो भी इसकी वजहसे मोक्षमार्गरूप प्रयोजनको साधनेमें विपरीतता होती नहीं है; क्योंकि अंदरकी प्रयोजनरूप वस्तुको जाननेमें कुछ विपरीतता उसे होती नहीं है; अंदरके रागको ज्ञानरूप जान लेवे या शुभरागको मोक्षमार्गरूप जान लेवे–इस प्रकार प्रयोजनभूत तत्त्वोंमें ज्ञानीको विपरीतता होती नहीं है, प्रयोजनभूत तत्त्व–स्वभाव-विभावका भिन्नत्व, स्व-परका भिन्नत्व–इत्यादिको तो उसका ज्ञान यथार्थ ही समझता (साधता) है, अतः उसका सारा ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही है। और अज्ञानी कदाचित् रस्सीको रस्सी, सर्पको सर्प, डाक्टरी, वकीलात, ज्योतिष इत्यादि अप्रयोजनरूप तत्त्वोंको जाने तो भी स्वप्रयोजनको उसका ज्ञान साधता नहीं होनेके कारण उसका सारा ही जानपना मिथ्याज्ञान है, स्व-परकी भिन्नताके कारण-कार्य इत्यादिमें उसकी भूल रहती है। अहा ! यहाँ तो कहते हैं कि मोक्षमार्गकी साधना करनेमें जो ज्ञान काममें आये, उसमें विपरीतता न हो, वही ज्ञान सम्यक्ज्ञान है; और भले ही बाहरका चाहे जितना जानपना हो, परंतु मोक्षमार्गकी साधना करनेमें जो ज्ञान काममें नहीं आता, उसमें जिसे विपरीतता होती है, वह

जो छोड़कर परभाव ध्यावे शुद्ध निर्मल आत्म रे।
वह आत्मवश है श्रमण, आवश्यक करम होता उसे ॥१४६॥

मिथ्याज्ञान है। जगतमें सबसे मूलभूत, प्रयोजनरूप मुख्य वस्तु शुद्धात्मा, उसे जाननेसे स्व-पर सभीका सम्यग्ज्ञान हुआ। अतः श्रीमद् राजचंद्रजीने कहा है कि 'जिसने आत्माको जाना उसने सब कुछ जाना।' तथा 'अनन्तकालसे जो ज्ञान भवहेतु हो रहा था उस ज्ञानको एक समयमात्रमें जात्यांतर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शनको नमस्कार,' ऐसे सम्यग्दर्शन बगैरका सारा ही ज्ञान व सारा ही आचरण थोथा है।

देखो, यह साधर्मीके साथकी चर्चा। दोसौ वर्ष पूर्व साधर्मियोंके प्रश्न आये थे उसके जवाब प्रेमपूर्वक पंडित टोडरमल्लजीने लिखे हैं। निश्चय सम्यग्दर्शन प्रत्यक्ष और व्यवहार सम्यग्दर्शन परोक्ष–ऐसा है या नहीं ? इत्यादि प्रश्नोंके जावाबमें सम्यग्दर्शनकी तथा स्वानुभूति इत्यादिकी अध्यात्म रहस्यसे भरी हुई चर्चाएँ इसमें लिखी है। अतः इसे 'रहस्यपूर्ण चिट्ठी' कही जाती है। इसमें कहेंगे कि सम्यक्त्वमें कोई प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसा भेद नहीं है। प्रत्यक्ष व परोक्ष ऐसे भेद तो ज्ञानमें पड़ते हैं। सम्यक्त्व तो शुद्धात्माकी प्रतीतिरूप निर्विकल्प है। ज्ञानका उपयोग समकितीको स्वमें हो या परमें हो तब भी सम्यक्त्व तो ऐसा का ऐसा ही विद्यमान रहता है।

यहाँ तो कहते हैं कि समकिती कदाचित् रस्सीको सर्प समझ लेवे, इत्यादि प्रकारसे बाहरके अप्रयोजनभूत पदार्थमें अन्यथा जान लेवे, तो भी उसका ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही है, क्योंकि उसमें ज्ञानके सम्यक्पनेकी कोई भूल नहीं है; परन्तु वह तो उस प्रकारके क्षयोपशमका अभाव है; ज्ञानावरणका उदयजन्य अज्ञानभाव जो कि बारहवें गुणस्थान तक होता है उस अपेक्षासे उसे अज्ञान भले ही कहा जाय परंतु मोक्षमार्ग साधने या नहीं साधनेकी अपेक्षासे जो सम्यग्ज्ञान तथा मिथ्याज्ञान कहा जाता है, उसमें तो समकिती का सारा सम्यग्ज्ञान ही है, उसे मिथ्याज्ञान नहीं है। उसको रस्सीको रस्सी नहीं जानकर, सर्पकी कल्पना (रस्सीमें) हो गई तो उसके कारण कोई उसके ज्ञानमें स्वपरकी एकत्वबुद्धि या रागादि परभावमें तन्मयबुद्धि हो नहीं जाती है, अतः उसका ज्ञान मिथ्या होता नहीं है; उस समय भी भेदज्ञान तो यथार्थरूपसे प्रवर्तमान है ही अतः उसका सारा ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही है। लोगोंको बाहरके जानपनेकी जितनी महिमा है उतनी अंदर के भेदविज्ञानकी महिमा नहीं है। सम्यग्दृष्टिका ज्ञान एक एक क्षणमें अंदरमें क्या काम करता है उसकी लोगोंको खबर नहीं है। प्रतिक्षण स्वभाव एवं परभावके पृथक्करणका अपूर्व कार्य उसके ज्ञानमें हो ही रहा है। वह ज्ञान स्वयं रागसे भिन्न होकर स्वभावकी जातिका हो गया है, वह तो केवलज्ञानका ही टूकडा (अंश) है। आगे चलकर उसे केवलज्ञानका अंश

आवश्यका कांक्षी हुआ तू स्थैर्य स्वात्मामें करे।
होता इसीसे जीव सामायिक सुगुण सम्पूर्ण रे ॥१४७॥

कहेंगे। वह ज्ञान इन्द्रियमन द्वारा नहीं हुआ है, परंतु आत्मा द्वारा हुआ है।

ज्ञानीको समस्त परभावोंसे अपने ज्ञानकी भिन्नता अनुभवमें आयी है अतः पहले अज्ञानदशामें रागमें तथा इन्द्रियोंमें तन्मय होकर जो ज्ञान काम कर रहा था वह ज्ञान अब अपने स्वभावमें ही तन्मय रहकर कार्य करता है। मेरा ज्ञान तो सदा ज्ञानरूप ही रहता है, मेरा ज्ञान रागरूप होता नहीं है, इस प्रकार ज्ञानको ज्ञानरूप ही रहता हुआ वह हमेशा भेदज्ञानरूप, सम्यग्ज्ञानरूप परिणमित होता है; इस प्रकार उसका सारा ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान ही है–ऐसा जानना। एक जीव बहुत शास्त्र पढा हुआ हो तथा बाहरी त्यागी होकर हजारों जीवों द्वारा पूजाया जा रहा हो, परंतु यदि शुद्धात्माके श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व न हो तो उसका सारा ही जानपना मिथ्या है, दूसरा जीव छोटा मेंढ़क, मत्स्य, सर्प, सिंह या बालक दशामें हो, शास्त्रके शब्दोंका पढ़ना भी आता न हो फिर भी यदि शुद्धात्माके श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्वसे सहित है तो उसका सारा ही ज्ञान सम्यक् है, तथा वह मोक्षके पंथमें है; सारे ही शास्त्रोंके रहस्यरूप अंदरका स्वभाव-परभावका भेदज्ञान उसने स्वानुभवसे जान लिया है। अंदरमें जो बाह्य तरफकी शुभ या अशुभ संवेदनाएँ उठती है वह मैं नहीं हूँ, उसके वेदनमें मेरी शांति नहीं है, मैं तो ज्ञानानंद हूँ–कि जिसके वेदनमें मुझे शांतिका अनुभव होता है–इस प्रकार अंतरके वेदनमें उस समकितीको भेदज्ञान तथा शुद्धात्मप्रतीति रहती है। शुद्धात्मासे विरुद्ध किसी भावमें उसे कभी आत्मबुद्धि नहीं होती है। जबसे सम्यग्दर्शन हुआ तबसे ज्ञान इस प्रकार रागसे भिन्न होकर काम करने लगा, इसलिये सम्यग्दृष्टि जो कुछ जानता है वह सब सम्यग्ज्ञान है ऐसा कहा। ज्ञानका उघाड (क्षयोपशम) थोड़ा हो या अधिक हो, उसके ऊपरसे कोई सम्यक् मिथ्यापनेका नाप नहीं निकलता, परंतु वह ज्ञान किस तरफ कार्य कर रहा है, किसमें तन्मयरूप होकर प्रवर्तन करता है इसके ऊपर सम्यक्-मिथ्यापनाका नाप है। यदि स्वभावमें तन्मय रहता हो, तो सम्यक् है, परभावमें तन्मय रहता हो तो मिथ्या है। ज्ञानीको उपयोग परको जाननेमें रहता हो उससे ऐसा नहीं समझ लेना कि तब उसका उपयोग परमें तन्मय हो गया है उस समय भी अंतरके भानमें उपयोग परसे भिन्न और भिन्न ही रहता है। स्वमें तन्मयताकी बुद्धि उस समय भी उसकी छूटी नहीं है। यह तो ज्ञानीके अंतरकी अलौकिक वस्तु है, उसका नाप बाहरसे समझमें आ सके ऐसा नहीं है। शुभ-अशुभ परिणाम द्वारा भी उसके नाप निकाल पाये ऐसा है नहीं। अंतरदृष्टि क्या काम करती है उसका नाप अंतरदृष्टिसे ही समझमें आ सके ऐसा है।

रे श्रमण आवश्यक-रहित चारित्रसे प्रभ्रष्ट है।
अतएव आवश्यक करम पूर्वोक्त विधिसे इष्ट है ॥१४८॥

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

कर्म अजीव हैं, उससे राग हुआ माने तो नव तत्त्व नहीं रहते। उसका ज्ञान मिथ्या है तथा उसने ज्ञेयोंको भी यथार्थ नहीं माना है। यहाँ तो नवों तत्त्व हैं—ऐसा सिद्ध करना है। संवर पर्याय जीव द्रव्यमेंसे आई है—ऐसा भी यहाँ नहीं कहना है। जीव और संवरको यहाँ भिन्न-भिन्न तत्त्व कहना है। संवर भी 'है' ऐसा कहना है, जीव भी 'है' ऐसा कहना है; किसीके कारण कोई नहीं है।

मुनिदशामें तीन कषायका अभाव होता है, उस संवर दशामें राग अति मन्द हो जाता है, उस दशामें वस्त्र-पात्र नहीं होते—ऐसा मानना चाहिए। आधाकर्मी या उद्देशिक आहार मुनिको होता है—ऐसा जो मानता है उसको नवों तत्त्वोंमें भूल है। उद्देशिक आहार लेनेका तीव्र राग आने पर भी उसे छठवीं भूमिकाका मन्द राग माना वह आस्रवतत्त्वकी भूल है।

तथा मुनिको निर्दोष आहार ही होता है, तथापि उद्देशिक आहार माने वह अजीवमें भूल है। तथा मुनिदशामें अतिमन्द राग शेष रहा है और अकषायी दशा हुई है ऐसा भी उसने यथार्थ नहीं माना वह संवर-निर्जरामें भूल है। तथा शुद्ध तत्त्वको भी नहीं माना। उद्देशिक आहारका तीव्र राग माना, इसलिए निमित्तरूपसे तीव्रकर्मका उदय माना परन्तु वास्तवमें तो कर्मका मन्द उदय है; इसलिए उसकी अजीव तत्त्वमें भूल है। इत्यादि प्रकारसे नवों तत्त्वोंमें भूल आती है। कर्मके कारण राग होता है—ऐसा जिसने माना है उसने भूतकालमें भी अनन्त जीवोंको कर्मसे राग हुआ माना—इसप्रकार तीनों कालमें नव तत्त्वोंकी खिचड़ी करता है। इच्छासे शरीर चलता है ऐसा माननेवाला तीनों कालके तत्त्वकी खिचड़ी करता है। छठवें गुणस्थानमें अट्ठाईस मूलगुणोंका विकल्प वह आस्रवतत्त्व है। वह है तो संवरतत्त्व टिक रहा है ऐसा माने तो बड़ी भूल है। संवरतत्त्व भिन्न है। इसप्रकार अज्ञानी तीनों कालके तत्त्वोंमें भूल करता है।

एक तत्त्वको मिश्र करे तो नवोंमें भूल होती है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धमें भूल करनेवाला नवोंमें भूल करता है। जड़कर्मकी पर्याय स्वतंत्र है। नैमित्तिकदशा आत्मामें हो

रे साधु आवश्यक सहित वह अन्तरात्मा जानिये।
इससे रहित हो साधु जो बहिरातमा पहिचानिये ॥१४९॥

वह भी स्वतंत्र है। संवर–निर्जरा अपूर्ण शुद्धपर्याय है, मोक्ष पूर्ण शुद्धपर्याय है; आस्रव–बंध मलिन पर्याय है, —ऐसा न मानकर पुण्यकर्म बाँधेंगे तो भगवानके पास जाएँगे और वहाँ धर्म प्राप्त करेंगे—ऐसा अज्ञानी मानता है। द्रव्यपुण्य अजीवतत्त्व है। पुण्यरूपी अजीवतत्त्वसे शरीर (दूसरा अजीवतत्त्व) भगवानके पास नहीं जाता। तथा वाणी अजीवतत्त्व है, उससे सम्यग्दर्शन मानता है वह जीव, अजीव और संवरको एक मानता है। रागसे पैसा मिलता है ऐसा माने तो पाप और अजीव एक हो जाए। रागसे सुख माने तो पाप और संवर एक हो जाए। एक तत्त्वमें भूल करे उसकी नवों तत्त्वोंमें भूल हो जाती है। नवों पदार्थ सत् हैं इसलिए कोई किसीका आश्रय नहीं लेता। जीव त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द परमात्मा है; विकारसे अविकारीदशा प्रकट होगी ऐसा माने तो वह नव पदार्थोंको नहीं मानता। आत्मामें जो पर्याय प्रकट होती है वह उसका स्वकाल है—ऐसा जानना। पैसा अजीव है, उसके कारण आकुलतारहित धर्म हो सकता है ऐसा माननेवाला मूढ़ है। मैं हूँ तो दुकानकी व्यवस्था चलती है—ऐसा माननेवाला भी मूढ़ है। जीवने राग किया इसलिए कर्मबंध हुआ वह बात मिथ्या है। कर्म अजीवतत्त्व है, राग आस्रवतत्त्व है, एक–दूसरेके आश्रित नहीं हैं। इसप्रकार वस्तुस्वरूप जानना चाहिए।

मुनिपनेकी जो पर्याय है उससे विपरीत जाने तो ज्ञान मिथ्या है। अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुकी पर्याय जैसी है वैसी ज्ञान जानता है। नव पदार्थोंमें नवोंको पृथक् जाने तो यथार्थ तो यथार्थ है। कर्मादि पदार्थ अजीव हैं, वैसे अनंत अजीव हैं। एक अजीवसे दूसरा अजीव पदार्थ चले तो अनंत अजीव नहीं रहते। स्वतंत्र पदार्थ माने तो अजीवको यथार्थ माना कहा जाए—इसप्रकार नवोंको जैसे है वैसे–यथावत्–जानना चाहिए। तथा जीव शुद्ध कारणपरमात्मारूप है और उसकी पर्यायमें होनेवाले राग–द्वेष वे आस्रवतत्त्व हैं। जीव और आस्रव दोनों भिन्न पदार्थ हैं। तथा कर्मका जोर है इसलिए राग–द्वेष होते हैं ऐसा भी नहीं है। इसप्रकार जीव, अजीव, आस्रवादिको पृथक् रूपसे ज्ञान जानता है।

कर्मका जोर है इसलिए पुरुषार्थ नहीं हो सकता। ऐसा माननेवाला पदार्थोंको स्वतंत्र नहीं मानता। जीव स्वतंत्र, विकार स्वतंत्र और कर्म स्वतंत्र है—ऐसा वह नहीं मानता।

धर्मास्तिकाय अजीव है, उसके कारण जीवकी गति नहीं होती। जीवमें क्रियावती शक्ति है, उसके कारण क्षेत्रांतर होता है, वह धर्मास्तिकायसे नहीं होता। कालके कारण

जो बाह्य अन्तर जल्पमें वर्ते वही बहिरातमा।
जो जल्पमें वर्ते नहिं वह जीव अन्तरआतमा ॥१५०॥

पदार्थोंमें परिणमन माननेसे तथा अधर्मद्रव्यके कारण जीव स्थिर होता है ऐसा माननेसे नव तत्त्व नहीं रहते। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल अजीव हैं, उनको स्वतंत्र मानना चाहिए। तीनों कालके पदार्थोंको स्वतंत्र मानना चाहिए।

तथा तीन कालके द्रव्य–गुण–पर्यायको जैसे हैं वैसे ज्ञान जानता है। गुणको पर्याय नहीं जानता, द्रव्यको गुण नहीं जानता, एक गुण पूरा पर्यायमें नहीं आ जाता। भूत पर्यायके कारण वर्तमान पर्याय नहीं होती और वर्तमान पर्यायके कारण भविष्यकी पर्याय नहीं होती। मोक्षमार्गकी पर्यायके कारण मोक्ष हुआ माने तो मोक्षमार्ग जो कि संवर–निर्जरा है और मोक्ष जो मोक्षतत्त्व है—वे दोनों एक हो जानेसे नव पदार्थ पृथक् नहीं रहते। एक पर्यायके कारण दूसरी पर्याय माने तो तीनों कालकी पर्यायें भिन्न–भिन्न नहीं रहती। पर्यायका नाश हो जाता है। सम्यग्दर्शन हुआ इसलिए चारित्र हुआ ? नहीं। प्रत्येक गुण भिन्न–भिन्न है, पर्याय भिन्न–भिन्न है—ऐसा ज्ञान जानता है।

प्रत्येक समयके उत्पादको उत्पाद, व्ययको व्यय और ध्रुवको ध्रुव जानता है। व्यय कारण और उत्पाद कार्य—ऐसा यहाँ नहीं लेना है। व्ययसे उत्पाद कहो तो व्यय और उत्पाद नहीं रहते। ध्रुवसे उत्पाद कहो तो ध्रुव और उत्पाद नहीं रहते। प्रत्येकको भिन्न–भिन्न ज्ञान जानता है।

इसप्रकार ज्ञेयकी बात आगममें लिखी है। षट्खण्डागममें और समयसारादिमें यह बात कही है। ज्ञातु योग्यं ज्ञेयं = ज्ञानमें ज्ञात होने योग्य उसे ज्ञेय कहते हैं।

ज्ञेय सामान्य प्रकारसे एक है। अब दो भेद करते हैं—आत्माके सिवा अन्य पदार्थ ज्ञेय हैं—ऐसा ज्ञान जानता है। जैसा है वैसा ज्ञान जानता है; परको पररूपसे जानता है परन्तु परका अनुभव नहीं होता। निज ज्ञेयको जानना, स्वद्रव्य–गुण–पर्यायको जानकर परकी उपेक्षा करके स्वकी अपेक्षा करके स्वका अनुभव करना वह फल है। दूसरे जीवोंको, पुद्गल, धर्मादि पदार्थोंको जैसे हैं वैसे ज्ञान जानता है—स्वको जानकर स्वका अनुभव करता है; परका ज्ञान होता है परन्तु परका अनुभव नहीं होता; स्वका ज्ञानसहित अनुभव होता है। लोकालोकका ज्ञान अपनेमें होता है, परन्तु लोकालोक अपनेमें प्रविष्ट नहीं हो जाते।

(क्रमशः) ✻

रे धर्म-शुक्ल-सुध्यान-परिणत अन्तरात्मा जानिये।
अरु ध्यान विरहित श्रमणको बहिरातमा पहिचानिये ॥१५१॥

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

(प्रवचन : २)

तत्त्वनिर्णय करनेकी प्रेरणा

जो जीव भगवानके द्वारा कथित आत्मस्वरूपकी पहिचान नहीं करता और यह निर्णय नहीं करता कि मेरा स्वभाव निःशंक भवके भावसे रहित तथा भवसे भी रहित है, तबतक वह यदि देव-शास्त्र-गुरुकी भक्ति, पूजन, तप, व्रत, दान इत्यादि सब कुछ करता रहे तो भी उसमें मात्र पुण्य है। जो भगवानके द्वारा कहे गये परिपूर्ण स्वभावकी श्रद्धा करता है वही सच्चा धर्मात्मा है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि तुमने महाभाग्यसे यह मनुष्य देह पाया है इसलिए वीतराग प्ररूपित धर्मको पहचानों। वीतरागमार्गमें सर्व धर्मका (आत्माके श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र आदि सभी धर्मका) पहला मूल सम्यग्दर्शन है, और उसका भी मूल तत्त्वनिर्णय है, तथा तत्त्वनिर्णयका मूल शास्त्राभ्यास है; उसे अवश्य करना चाहिए। जो शुभवृत्ति उत्पन्न होती है वह आस्रवतत्त्व है—वह संवरतत्त्वका स्वरूप नहीं है। तब फिर संवरतत्त्वका या धर्मका स्वरूप क्या है? इसका निर्णय करनेके लिए जिनकथित शास्त्राभ्यास करना चाहिए। तत्त्वका स्वरूप समझे बिना लोग कहते हैं कि ''भगवानने घोर तपस्या की थी, किन्तु तपस्याका सच्चा स्वरूप नहीं जानते। क्या भगवानकी तपस्या दुःख था? क्या धर्म कष्टदायक होता है? नहीं। भगवानके अन्तरस्वरूपको जो नहीं जानते वह उनकी तपस्याका स्वरूप कैसे जान सके? भगवान तो चिदानन्दतत्त्वके अनुभवकी लहरमें थे, स्वरूपके अपूर्व आनन्दमें लीन थे। अन्तरस्वरूपकी लीनतामें आहार इत्यादिक सहज ही छूट गये थे। ऐसी तपस्या भगवानकी थी, उसमें दुःख नहीं था किन्तु आनन्द ही आनन्द था। तत्त्वका स्वरूप समझे बिना चाहे जिसकी हाँमें हाँ मिला देना–यह बात पात्र जीवके लिये शोभास्पद नहीं है।

अरे! तत्त्वनिर्णयका ऐसा सुअवसर मिला है उसे जो व्यर्थ गँवा देता है और तत्त्वनिर्णय नहीं करता उस पर दया करके आचार्य महाराज कहते हैं कि—

प्रतिक्रमण आदिक्रिया तथा चारित्रनिश्चय आचरे।
अतएव मुनि वह वीतराग-चरित्रमें स्थिरता करे ॥१५२॥

प्रज्ञैव दुर्लभा सुष्ठु दुर्लभा सान्यजन्मने।
तां प्राप्य ये प्रमाद्यन्ति ते शोच्याः खलु धीमताम्॥१४॥

—आत्मानुशासन

पहले तो इस जगतमें बुद्धिका होना ही दुर्लभ है और फिर उसमें भी परलोकके लिये बुद्धिका होना तो और भी अधिक दुर्लभ है। जो मनुष्य हुआ उसको बुद्धि तो मिली है, किन्तु उसमें भी वीतराग भगवानके द्वारा कहे गये मार्गका यथार्थ श्रवण दुर्लभ है। हे भाई ! एकबार तूं प्रेमसे वीतरागका मार्ग सुन तो सही, यह मार्ग अपूर्व है। पहले कभी ऐसा मार्ग नहीं जाना था। अब यह अवसर मिलने पर भी जो इसे व्यर्थ ही गँवा देता है उस पर ज्ञानियोंको करुणा आती है।

सच्चा जैन किसे कहा जाय ? जो यह मानते हैं कि जैन व अन्य सभी धर्म समान हैं, वे तो व्यवहार जैन भी नहीं हैं। जैन धर्म तो आत्माका स्वरूप है, विश्वदर्शन है, उसका स्वरूप तीनकाल और तीनलोकमें भी नहीं बदल सकता, और दूसरोंके साथ उसका मिलान नहीं हो सकता। जिसने छह द्रव्यों (छह द्रव्योंमें अपना आत्मा भी आ जाता है,) उसको जान लिया है और जो रागद्वेषको दूर करते हैं वे ही आत्मा सच्चे जैन हैं। सच्चा जैनी होनेके लिए सर्व प्रथम आगम द्वारा तत्त्वका निर्णय करना चाहिए। जो तत्त्वका निर्णय नहीं करते वे सच्चे जैन नहीं हैं। जो तत्त्वका निर्णय नहीं करता और पूजा, स्तोत्र, दर्शन, त्याग, तप, वैराग्य, संयम, संतोष इत्यादि सब व्यवहार कार्य किया करता है उसके यह सब कार्य मोक्षके लिए व्यर्थ हैं। इसी शास्त्र (सत्तास्वरूप)में आगे कहा है कि—''जो सर्वज्ञकी सत्ताका निश्चय नहीं करता और कुछ परम्परासे, पंचायतके आश्रयसे, अथवा मिथ्या धर्मबुद्धिसे, दर्शन-पूजनादिरूप प्रवृत्ति करता है अथवा जो मतपक्षके हठाग्रहके कारण दूसरे (देवी देवताओं) को न भी माने और मात्र उसका (अपने माने हुए जिनदेवादिकका) ही सेवक बना रहे उसे भी अपने आत्मकल्याणरूप कार्यकी सिद्धि नहीं होती। इसलिये वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है; जब कि वह सर्वज्ञकी सत्ताका ही निश्चय नहीं कर सका तब वह सर्वज्ञस्वभावी स्व स्वरूपका निश्चय कैसे करेगा ?''

जो भगवानके पास जाकर पूजा, स्तोत्र इत्यादिक तो करता है किन्तु यह निर्णय नहीं करता कि भगवान कौन हैं और मैं कौन हूँ ? उसे धर्म कैसे होगा ? वह अपने

रे ! वचनमय प्रतिक्रमण, वाचिक-नियम, प्रत्याख्यान ये ।
आलोचना वाचिक, सभीको जान तू स्वाध्याय रे ॥१५३॥

बचावके लिए यह कहता है कि 'हम पंचमकालके अल्पबुद्धिवाले प्राणी हैं इसलिए हम तत्त्वका निर्णय नहीं कर सकते।' किन्तु यह बात वीतरागमार्गमें नहीं चल सकती। तत्त्वनिर्णयमें किसी भी प्रकारकी गड़बड़ी नहीं चल सकती। भैया ! संसारके काममें तो तेरी बुद्धि चलती है, वहाँ तुझे पंचमकाल बाधक नहीं होता, और इस तत्त्वनिर्णयमें तेरी बुद्धि नहीं चलती, यह बात ही गलत है। वास्तवमें तुझे तत्त्वनिर्णयकी दरकार नहीं है। तत्त्वनिर्णयके बिना त्याग किसका करेगा ? जो वास्तवमें तुझे समझने लायक तत्त्व है उसे तो समझता नहीं है और बाहरी त्याग-वैराग्यमें आत्मभानके बिना लग जाता है, किन्तु इसमें भी धर्म नहीं है। और तत्त्वज्ञानके बिना अकेला वैराग्य (मंदराग) भी वस्तुका स्वरूप नहीं है। वह तो पुण्यभाव है, उसमें धर्म नहीं है। संयमका पालन करे, परिग्रहको कम करे, एकबार रसोई बनावे, इसमें वह धर्म मान बैठा है कि प्रवृत्ति कम हो गई, और अमुक रकमसे अधिक न रखकर उसमें धर्म मान लेता है, किन्तु आत्मभानके बिना वीतरागकी तराजूमें उसके त्याग और संतोष इत्यादिककी धर्ममें गिनती नहीं है। वीतरागमार्गमें तत्त्वनिर्णयके बिना धर्म हो ही नहीं सकता। आत्माके निर्णय बिना व्रत, तप, भक्ति, पूजा इत्यादि समस्त कार्य असत् हैं। उसमें पुण्य है लेकिन धर्म नहीं है, इसलिए उसको असत् कहा।

कुछ लोग भड़कके कहते हैं कि अरे ! क्या हमारा सब गलत ? ऐसे विपरीत मान्यतावाले भड़क उठें, ऐसी यह बात है। जगतके लोग जरासी शुभरागकी क्रिया करके समझते हैं कि अब तो मोक्ष हो जायेगा, किंतु यहाँ कहते हैं कि सम्यग्दर्शनके बिना यह सब असत् है। आत्माको समझे बिना व्रत, तप इत्यादिक करना वह तो बिना इकाईकी बिन्दीके समान है।

पुण्य करते करते उससे धर्म हो जाय यह अशक्य है। अभी पुण्य करेंगे तो देव होंगे और उसके बाद भगवानके पास जाकर धर्म प्राप्त करेंगे, इसलिए अभी पुण्य करलें, इस समय तत्त्व समझनेकी आवश्यकता नहीं है, ऐसी मान्यतावाले धर्मको तो प्राप्त नहीं कर पाते किन्तु तत्त्वके विरोधसे नीचे उतरते जाते हैं। आत्माका निर्णय किये बिना शुभभाव करके यदि कोई जीव देव हो भी गया तो उससे क्या ? वह पुण्यसे लाभ मानकर

(शेष देखे पृष्ठ २४ पर)

जो कर सको तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदिक कीजिये ।
यदि शक्ति हो नहिं तो अरे श्रद्धान निश्चय कीजिये ॥१५४॥

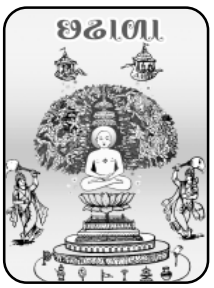

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

(दूसरी ढाल, गाथा-१३)

गृहीत मिथ्याज्ञानका स्वरूप और उसे छोड़नेका उपदेश

परम सत्य वीतरागमार्गके प्रकाशक सर्वज्ञ परमात्मा अभी विदेहक्षेत्रमें साक्षात् विराजमान हैं। एक-दो नहीं लेकिन लाखों सर्वज्ञ भगवंतो वहाँ विराजमान है। वहाँ बाह्यमें गृहीत मिथ्यात्वकी प्रवृत्ति होती नहीं है, अन्यमतके मंदिरों भी होते नहीं है; अंतरमें जीवोंका अभिप्राय विपरीत हो वह पृथक् बात है। लेकिन बाह्यमें जैनमार्गसे विरुद्ध मार्ग चलता नहीं है। यहाँ तो सर्वज्ञका विरह, मुनिओंका अकाल, विराधक जीव भी अधिक, आराधक जीव कोई विरल और उसमें भी धर्मके नाम पर कितनी विपरीतता चल रही है....पानीमें आग लगे वैसे जैनधर्मके नाम पर देव-गुरु-शास्त्रमें भी अधिक विपरीतता चलती है। उसमें यथार्थ मार्ग क्या है उसे समझकर मुमुक्षु जीवोंको उसका सेवन करना चाहिये। और विपरीतताका सेवन त्याग करना चाहिये।–स्वयंका हित चाहते हो तो ऐसा करो। स्वयंके सच्चे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र द्वारा ही स्वयंको लाभ है।

देव-गुरु-धर्मके स्वरूपमें जिसे भूल हो, अथवा बंध-मोक्षके कारणमें जिसकी भूल हो, उसे मूलभूत भूल है; सर्वज्ञदशा, मुनिदशा आदि उत्कृष्टदशा प्रकट होने पर कैसी शुद्धता होती है, कैसे आस्रव-बंध टल जाय और उसके निमित्तरूप बाह्यदशा कैसी हो उसकी उसे पहिचान नहीं है विपरीत मानते है उसे गृहीत मिथ्यात्व है। केवलज्ञान होने पर शरीर भी दिव्य हो जाय, और वहाँ ऐसी अशाताका उदय न हो कि भूख लगे और रोग हो और भोजन लेना पड़े ! मुनिदशाकी पवित्रभूमिकामें ऐसा तीव्र कषाय न हो कि दो बार खाना पड़े कि वस्त्र पहनने पड़े। धर्मके जिज्ञासुको प्रत्येक भूमिकाका यथार्थ स्वरूप शास्त्र अनुसार समझना चाहिये। क्योंकि हितके कारणरूप ऐसे मूलभूत तत्त्वोंमें जिसे भूल हो वह अपना हित कर सकता नहीं है।

पूरा परख प्रतिक्रमण आदिकको परम-जिनसूत्रमें।
रे साधिये निज कार्य अविरत साधु ! रत व्रत मौनमें ॥१५५॥

केवलीदशामें आहार मानना अथवा मुनिदशामें वस्त्र मानना नव तत्त्वोंमें भूल होती है। क्योंकि वह पवित्रदशामें ऐसे आस्रव-बंध न होने पर भी माने, उस दशामें जो संवर-निर्जरा है उसे जाना नहीं; मोक्षके लिये कितनी हद तक संवर-निर्जरा हो और कितने आस्रव-बंध छूट जाय–उसे न जानते उससे अल्पमें मोक्षको मना दिया, अर्थात् उसमें भी भूल हुई। जीवको अजीवके साथ सम्बन्धकी हद कितनी है, कि जीवकी शुद्ध पर्यायमें कषायका अभाव होने पर अजीवके साथका कितना सम्बन्ध छूट जाय–वह नहीं जाना अर्थात् जीव-अजीवके ज्ञानमें भी भूल हुई। जैसे कि वीतरागजीवको अजीवके साथ ऐसा सम्बन्ध न हो कि वस्त्र अथवा आहार हो इस प्रकार जिसकी मूल तत्त्वमें विपरीत मान्यता है उसे सभी तत्त्वोंमें भूल आ जाती है। इसलिये वीतरागदेवके कहे समयसारादि सत्य शास्त्र अनुसार यथार्थ तत्त्वोंका निर्णय करके अज्ञान टालना चाहिये।

इस प्रकार गृहीत मिथ्यादर्शन और गृहीत मिथ्याज्ञानका स्वरूप बताकर उसे टालनेका उपदेश दिया। अब गृहीत मिथ्याचारित्र क्या है उसे कहते है और उसे छोड़नेका उपदेश देते है।

गृहीत मिथ्याचारित्रका स्वरूप और उसे छोड़नेका उपदेश

जो ख्याति लाभपूजाति चाह, धरि करन विविध विध देहदाह।
आत्म-अनात्मके ज्ञानहीन, जो जो करनी तत करन छीन॥१४॥

जिसमें आत्मा-अनात्माका भेदज्ञान नहीं, जिसमें ख्याति लाभ-पूजा आदिकी चाह है, जो विविध प्रकारके देहदाहरूप है–शरीरको कष्ट और पीड़ा देनेरूप अथवा क्षीण करनेरूप है–ऐसी अज्ञानीकी क्रियाएँ वह सब मिथ्याचारित्र है–ऐसा पहिचानकर उसको छोड़ दे और आत्महितके पंथमें लग जाओ।

यह अन्यमतकी जो मिथ्या क्रियाएँ है उसकी बात है। अज्ञानीरूप द्रव्यलिंगी होकर पंचमहाव्रतादि शुभक्रियाएँ की वह अगृहीत मिथ्याचारित्रमें गई। यहाँ गृहीतकी बात चलती है। जिसे सच्चे देव-गुरुकी पहिचान नहीं और कुधर्मका सेवन करते है उसकी क्रियाओंमें ख्याति-प्रसिद्धिकी भावना रहती ही है; क्योंकि भीतर चैतन्यकी प्रसिद्धि तो हुई नहीं अर्थात् किसीने किसी प्रकारसे बाह्यमें प्रसिद्धि चाहता है। धर्मी तो जानता है कि हमारा कार्य हमारे

हैं जीव नाना, कर्म नाना, लब्धि नानाविध कही।
अतएव ही निज-पर समयके साथ वर्जित वाद भी॥१५६॥

अंतरमें हो ही रहा है, वहाँ जगतमें प्रसिद्धिका क्या काम है ? जगत जाने या न जाने उसके साथ अंतरके अनुभवका सम्बन्ध क्या है ? उसी प्रकार अज्ञानीको अंतरमें कषायोंको क्षीण करनेकी तो खबर नहीं अर्थात् बाह्यमें देहकी क्षीणताको देहके कष्टको तो चारित्र समझता है। देहकी क्रिया तो अजीव है और चारित्र तो जीवकी क्रिया है,—इस प्रकार जीव-अजीवकी भिन्नताका जिसे भान नहीं है उसे यथार्थ चारित्र कदापि होता नहीं है–चाहे देहको कृष कर दे लेकिन उससे धर्मका किंचित् लाभ होता नहीं है। अज्ञानी कुदेवादिको मानता हुआ चाहे रागकी मंदता अल्प करके शुभभाव करे, उसमें देहकी कृषता होती है लेकिन कषायकी कृषता होती नहीं है, कषायोंकी तो मिथ्यात्वके कारण पुष्टि होती है। कषायोंसे भिन्न शांतस्वरूप आत्माको जाने बिना कषाय क्षीण होती नहीं है–उसका तप वह कुतप है, उसकी क्रियाएँ वह गृहीत मिथ्याचारित्र है—इस प्रकार जानकर स्वयंमें ऐसा भाव हो तो उसको छोड़ना–ऐसा उपदेश है।

भेदज्ञान बिना चारित्र होता नहीं। स्व-परका भेदज्ञान करके उसकी उग्र भावना द्वारा स्वमें ठहरने पर चारित्र होता है। नियमसार गाथा-८२में कहते है–जीव और कर्मकी भिन्नता जानकर, उसके भेदके अभ्यास द्वारा जीवको मध्यस्थता होती है और इसलिये उसे चारित्र होता है। गाथा १०६में भी कहते है कि जीव सदा जीव और कर्मके भेदका (पृथक्पनेका) अभ्यास करता है वह ही पच्चखाण धारण करनेमें समर्थ होता है। इस प्रकार भेदज्ञानका अभ्यास वह ही चारित्रका मूल है।

आत्मा ज्ञानानंद स्वरूप, और अनात्मा अर्थात् शरीर तथा रागादि; उसकी भिन्नताको जो पहिचानता नहीं उसे आत्माकी प्रसिद्धिकी खबर नहीं है और लौकिक प्रसिद्धिके लिये तप आदि करता है। देहको क्षीण कर दू तो कल्याण होगा–इस प्रकार देहके साथ एकत्वबुद्धिसे मानता है और इसलिये देहको कष्ट उत्पन्न करनेरूप जो मिथ्याक्रियाएँ करता है लेकिन कषाय किस प्रकार रुके उसे तो जानता नहीं है उसकी सभी क्रियाएँ अज्ञानसे भरी है, वह आत्माको लाभ करनेवाली नहीं है, उस क्रियाको तो 'मोक्षको काटनेकी' कही है; उसकी क्रियाओंमें आत्माकी शांति नहीं लेकिन देहका दाह है, अंदर कषायका मोह है वे बाह्यमें देहका दाह है, चैतन्यकी शांतिका अनुभव बिना कषायकी सूझन कैसे मिटे ? जिसे अकषायी शांतिका वेदन नहीं उसे अंदर कषायकी सूझन विद्यमान ही है।

निधि पा मनुज तत्फल वतनमें गुप्त रह ज्यों भोगता।
त्यों छोड़ परजनसंग ज्ञानी ज्ञान निधिको भोगता ॥१५७॥

जिसमें आत्माकी वीतरागता पुष्ट हो, आनंदकी वृद्धि हो और कषाय क्षीण हो उसे चारित्र कहते है; यह चारित्र आत्माकी दशामें रहता है, देहकी क्रियामें आत्माका चारित्र रहता नहीं है। यद्यपि मुनिपनारूप चारित्रदशाके समय दिगंबर शरीर हो लेकिन चारित्र शरीरमें रहता नहीं है, चारित्र तो आत्मामें ही रहता है। आत्मस्वरूपमें विचरना उसका नाम चारित्र है। लेकिन देहसे भिन्न आत्मा क्या है उसकी जिसे खबर नहीं, देहकी क्रिया कौनसी और आत्माकी क्रिया कौनसी उसका जिसे भान नहीं है, उसे चारित्र कैसा ? कदाचित् वह शुभराग करे लेकिन वह कोई धर्म नहीं है, वह चारित्र नहीं है। धर्म और चारित्र तो चैतन्यकी श्रद्धा करके उसमें ठहरना वह है उसके बदले कितने भी कायक्लेश करे तदपि उसमें आत्माकी पुष्टि नहीं है; देहकी क्षीणता वह मेरी क्रिया है ऐसी मिथ्या जड़बुद्धिसे तो आत्माके गुणकी दशा क्षीण होती है–कषाय तो क्षीण होती नहीं है। देहकी क्षीणतासे उसे क्या लाभ ?

(क्रमशः) ✻

(पृष्ठ ८ का शेष भाग) (पूज्य बहिनश्री)

साधना : हे वैराग्य और ज्ञान ! उनके उपकारकी बातें आपको कितनी बतलाऊँ, जितनी बातें करे उतनी कम है, लेकिन आजके दिन ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं कि....उनके पावन जीवनमेंसे बोध लेकर हम सभी सम्यग्दर्शन त्वरित प्राप्त करें...

स्वानुभूति बोधदाता अनुभवी संत कहानगुरुदेवकी जय हो...

चैतन्यदेवके प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त प्रशममूर्ति भगवती मातकी जय हो...

✻ ✻ ✻

(पृष्ठ २० का शेष भाग) (मुक्तिका मार्ग)

अपने गुणोंको तो दग्ध कर रहा है।

अरे जीव ! आत्माका भान प्राप्त किये बिना प्रतिक्षण अरबों रुपया पैदा करनेवाला बहुत बड़ा राजा भी अनन्तबार हुआ, स्वर्गका बहुत बड़ा देव भी तूं अनन्तबार हुआ और ऐसी विक्रियाऋद्धिवाला देव भी हुआ जो एक कल्पनामात्र करके अनेक द्वारिका नगरियाँ, अनेक कृष्ण और अनेक गोपियाँ दिखा सकता है। किन्तु भाई ! आत्माका भान किये बिना तेरा उद्धार न हुआ और तेरे चौरासीके अवतारका अन्त न हुआ। (क्रमशः) ✻

यों सर्व पौराणिक पुरुष आवश्यकोंकी विधि धरी।
पाकर अरे अप्रमत्त स्थान हुए नियत प्रभु केवली ॥१५८॥

श्री गुरु क्या करे ?

वीतरागं वीतरागं जीवस्य निजस्वरूपो वीतरागं।
मुहुर्मुह गुणनाति वीतरागं स गुरुपदं भासति सदा॥

जीवका स्वयंका निजस्वरूप वीतराग है, वीतराग है, वीतराग है; जो उस वीतराग स्वरूपका बारम्बार कथन करते है वे ही सदा गुरुपदसे शोभायमान है।

....श्रीगुरु ज्ञानको स्थिरिभूत करके स्वयंके आत्माको तो वीतरागस्वरूप अनुभव करते है, और जब भी किसीको उपदेश देते है तब अन्य सभीको दूर करके एक जीवका निजस्वरूप वीतराग है उसका ही बारम्बार कथन करते है। वीतराग स्वरूपके अतिरिक्त अन्य कोई अभ्यास जिनको नहीं है, वीतराग स्वरूपका ही अभ्यास है, स्वयं भी अंतरंगमें स्वयंके वीतराग स्वरूपका अभ्यास करते है—अनुभव करते है और बाह्यमें भी जब बोलते है तब 'आत्माका वीतराग स्वरूप है' वह ही बोलते है। ऐसे वीतरागका (-वीतरागी गुरुका अथवा वीतराग स्वरूपी आत्माका) उपदेश सुनते आसन्नभव्य जीवको अवश्य स्वयंके वीतराग स्वरूपकी पहिचान होती है, उसमें लेशमात्र संदेह नहीं है। जिनके वचनके विषयमें वीतरागताका ही कथन है ऐसे जैनी साधुको, आसन्नभव्य जीवोंको गुरु कहते है, क्योंकि उनके अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष ऐसे वीतरागी तत्त्वका उपदेश करते नहीं है, इसलिये उन पुरुषोंको ही (-वीतराग स्वरूपका अनुभव तथा उपदेश करनेवालेको ही) गुरुकी पदवी शोभती है अन्यको शोभती नहीं है—इस प्रकार निःसंदेहरूपसे जानना। —श्री आत्मावलोकन

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न :–आत्मामें अनंत गुण हैं; उस गुणभेदका लक्ष छोड़नेसे निर्विकल्पता होती है, तो उन अनंत गुणोंका ज्ञान चला नहीं जाता?

उत्तर :–आत्मामें अनंत गुण हैं, उनका ज्ञान करके भेदका लक्ष छोड़नेसे ज्ञान चला नहीं जाता; भेदका विकल्प छूटकर दृष्टि अभेद होनेसे निर्विकल्पतामें अनंतगुणोंका स्वाद आता है–अनुभव होता है।

समयसारकी ७वीं गाथाकी टीकामें कहा है–अनंत पर्यायोंको एक द्रव्य पी गया है, वहाँ 'पर्याय' शब्दसे सहवर्ती गुण कहे हैं। समयसारकी २९४वीं गाथाकी टीकामें भी सहवर्ती गुणोंको 'पर्याय' शब्दसे कहा है। अनंत गुणोंको द्रव्य पी गया है अर्थात् अनंत गुणमय अभेदरूप एक अखंड आत्मा है।

आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति अखंड अभेद एकरूप है। उसमें यह अशुद्ध पर्यायवाला आत्मा और यह शुद्ध पर्यायवाला आत्मा—इसप्रकार एकरूप आत्मामें दो भेद करना वह कुबुद्धि है। एकरूप ज्ञायकभावमें यह बहिरात्मा और यह अंतरात्मा—ऐसे भेद करता है, वह पर्यायबुद्धि है। शुद्ध निश्चयनयका विषय त्रिकाल शुद्ध एकरूप आत्मा पर्याय रहित है, उसमें पर्याय-भेद करनेका विकल्प करता है (दृष्टि करता है), वह मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न :–पर्यायको द्रव्यसे कथंचित् अभिन्न कहा है न?

उत्तर :–संपूर्ण द्रव्यको प्रमाणज्ञानसे देखने पर पर्याय कथंचित् भिन्न है और कथंचित् अभिन्न है–ऐसा कहा जाता है, परंतु शुद्धनयके विषयभूत त्रिकाली ध्रुवकी अपेक्षासे देखने पर वास्तवमें द्रव्यसे पर्याय भिन्न ही हैं, पर्यायार्थिकनयसे देखने पर पर्याय द्रव्यसे अभिन्न है। प्रयोजनकी सिद्धिके लिये जो पर्यायको गौण करके, अविद्यमान ही मानकर, त्रिकाली ध्रुवस्वभावको मुख्य करके भूतार्थका आश्रय कराया है।

प्रमत्त पर्याय परद्रव्यके निमित्तसे मलिन होती है–ऐसा तो कहा ही है, परंतु अप्रमत्त पर्यायको भी परद्रव्यके संयोगजनित कह दिया है। औदयिकादि चार भावोंको आवरणयुक्त

व्यवहारसे प्रभु केवली सब जानते अरु देखते।
निश्चयनयात्मक-द्वारसे निज आत्मको प्रभु पेखते॥१५९॥

कहा है। केवलज्ञानकी क्षायिक पर्याय भी कर्मकृत (पंचास्तिकायमें) कही है, क्योंकि उसमें कर्मके अभावकी अपेक्षा आती है। चार भाव ज्ञायकस्वभावमें नहीं हैं, कर्मकी अपेक्षा आनेसे उन्हें कर्मकृत कहा है। भगवानके कहे हुए द्रव्य-गुण-पर्यायके स्वरूपका प्रतिपादन करनेमें समर्थ ऐसे द्रव्यलिंगी मुनि द्रव्य-गुण-पर्यायादिमें तो चित्तको लगाते हैं, परंतु नित्यानंद प्रभु निज कारण परमात्मामें चित्तको कभी नहीं जोड़ते, इसलिये वे अन्यवश हैं। वे ऐसे विकल्पोंके वश होनेसे अन्यवश हैं। जो द्रव्य-गुण-पर्यायके विकल्पमें चित्तको लगाता है, वह विषका प्याला पीता है और जो नित्यानंद निज कारण परमात्मामें चित्त लगाता है, वह अनाकुल आनंदरसके प्याले पीता है।

प्रश्न :–अनादिके अज्ञानीको सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेके पहले तो अकेला विकल्प ही होता है न ?

उत्तर :–नहीं, अकेला विकल्प नहीं। स्वभाव तरफ ढलते हुए जीवको विकल्प होने पर भी उसी समय 'आत्मस्वभावकी महिमाका लक्ष' भी काम करता है और उस लक्षके बल पर ही जीव आत्माकी ओर आगे बढ़ता है; कहीं विकल्पके बल पर आगे नहीं बढ़ता। रागकी ओरका जोर–झुकाव हानिगत होने लगा और स्वभावकी तरफका जोर झुकाव वृद्धिगत होने लगा, वहाँ (सविकल्पदशा होने पर भी) अकेला राग ही काम नहीं करता; परंतु रागके अवलम्बन बिना, स्वभावकी तरफ जोरवाला–झुकाववाला एक भाव भी अन्तरंगमें वहाँ कार्य करता है और उसीके बल पर आगे बढ़ता-बढ़ता पुरुषार्थकी कोई अपूर्व छलांग लगाकर निर्विकल्प आनंदका वेदन करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है।

प्रश्न :–'विकार चारित्रगुणकी पर्यायकी योग्यतासे होता है' तब तो फिर जब तक उसमें विकार होनेकी योग्यता रहेगी, तब तक विकार होता ही रहेगा और तब तक विकार टालना जीवके आधीन नहीं रहेगा ?

उत्तर :–एक-एक समयकी स्वतंत्र योग्यता है–ऐसा निर्णय किस ज्ञानमें हुआ ? त्रिकाली स्वभावकी तरफ ढले बिना ज्ञानमें एक-एक समयकी पर्यायकी स्वतंत्रताका निर्णय नहीं हो सकता; और जहाँ ज्ञान त्रिकाली स्वभावमें ढला, वहाँ स्वभावकी प्रतीतिके बल पर पर्यायमें राग-द्वेष होनेकी योग्यता प्रतिक्षण घटती जाती है। जिसने स्वभावका निर्णय किया, उसकी पर्यायमें लम्बे समय तक राग-द्वेष बने रहें–ऐसी योग्यता ही नहीं रहती, ऐसा ही सम्यक्निर्णयका बल है।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *मात्र विचारोंके माध्यमसे स्वभावका ग्रहण हो सकता है?*

समाधान :—तत्त्वविचारमें उसका ध्येय ऐसा होना चाहिये कि मैं आत्माको ग्रहण कर लूँ। मात्र ऊपरी विचार या शास्त्रके विचार करता रहे तो नहीं होता। स्वभावका ग्रहण एकदम हो जाय ऐसा न होनेसे अपनेको चैतन्य ग्रहणके, शास्त्रके, द्रव्य–गुण–पर्यायके सब विचार बीचमें भले ही आयें, तथापि उसका ध्येय ऐसा होना चाहिये कि मैं अपने आत्माको ग्रहण कर लूँ। उसे अपने अस्तित्वको ग्रहण करनेका लक्ष्य होना चाहिये कि मुझे अपने आत्माका ग्रहण कैसे हो? यद्यपि तत्त्वके विचार वह मुख्य साधन है, तथापि उसमें भी अपनेको ग्रहण करनेका प्रयत्न होना चाहिये।

प्रश्न :— *क्या स्थूल उपयोगको सूक्ष्म बनानेकी कोई पद्धति नहीं होती?*

समाधान :—उपयोग स्थूल होनेका कारण अपनेको बाहरकी महिमा है; बाहरकी एकत्वबुद्धि है; इसलिये उपयोग स्थूल हो गया है।

बाह्यमें उसे कहीं अच्छा न लगे, कहीं न रुचे, कहीं चैन न पड़े, कहीं सुख न लगे तथा इस ओर सुख मेरे आत्मामें है; मुझे आत्मा कैसे पहिचाननेमें आये? कैसे पहिचान हो?— इस भाँति हर क्षण चैतन्यकी लगन लगे, उसकी महिमा आये तो उपयोग सूक्ष्म हुए बिना नहीं रहता। यथार्थ रुचि हो, सच्चा पुरुषार्थ करे, सच्चा कारण प्रकट हो तो कार्य हुए बिना नहीं रहता। जैसे अकौआका (आकका) बीज बोये और आमका वृक्ष उगे, ऐसा नहीं बनता; आमका बीज बोये तभी आमका वृक्ष उगता है; उसी प्रकार आत्माको यथार्थ पहिचाने, चैतन्यका मूल पहिचाने और पश्चात् उसमें ज्ञान–वैराग्य–ध्यानका सिंचन करे तो वह प्रकट होता है। उसका मूल स्वभाव पहिचानना चाहिये। यह स्वभाव है और यह विभाव है इसप्रकार विभाव–स्वभावका भेद करके स्वभावको पहिचानना चाहिये। सच्ची लगन लगी हो तो कार्य हुए बिना रहता ही नहीं; इसलिये स्वभावको पहिचाननेका ही प्रयास करना, थकना नहीं। उसका प्रयास

ज्यों ताप और प्रकाश रविके एक सँग ही वर्तते।
त्यों केवलीको ज्ञानदर्शन एक साथ प्रवर्तते ॥१६०॥

करनेसे कार्य होता है और वही स्वभावको यथार्थरूपसे ग्रहण करनेकी रीति है।

प्रश्न :— *ज्ञानीकी परिणति व्यापाररूप होती है ऐसा आप कहती हैं, परन्तु उसका अर्थ समझमें नहीं आता।*

समाधान :—व्यापाररूप परिणतिका अर्थ है ज्ञायकताकी–भेदज्ञानकी परिणति। ज्ञानीको स्वानुभूति होनेके पश्चात् सविकल्पदशामें जितने अंश ज्ञायकता प्रकट हुई है उतनी ज्ञायककी धारा वर्तती ही रहती है। पूरी दृष्टि तो अखंड द्रव्यपर है–द्रव्यको ही ग्रहण करती है; और ज्ञान भी उसी ओर झुका हुआ है, अंशतः परिणति उस ओर ढली हुई है इसलिये ज्ञायकताकी धारा तो चलती ही रहती है, भेदज्ञानकी धारा प्रतिक्षण वर्तती ही है, उसके पुरुषार्थकी धारा–पुरुषार्थका व्यापार चलता ही रहता है। चाहे जैसे शुभविकल्प हों तथापि भेदज्ञानकी–ज्ञाताकी धारा चलती ही रहती है। कभी उसे स्वानुभूति होती है या कभी सविकल्पतामें होता है; चाहे जिस कार्यमें हो अथवा किसी भी विकल्पमें हो, परन्तु भेदज्ञानकी धारा–ज्ञायककी धारा, अंशतः शान्तिका वेदन, ज्ञायकता आदि सब उसे कभी नहीं छूटते। सबसे ऊर्ध्व का ऊर्ध्व एवं पृथक् का पृथक् रहता है, उसकी ज्ञायकता कभी नहीं छूटती। जागते–सोते या स्वप्नमें भी उसे ज्ञायककी धारा ज्योंकी त्यों चलती ही रहती है।

प्रश्न :— *चौथे गुणस्थानमें अधिकसे अधिक कितनी शीघ्रतासे निर्विकल्पदशा हो सकती है?*

समाधान :—यह तो उसके पुरुषार्थकी योग्यतापर निर्भर है। छठवें–सातवें गुणस्थानमें क्षण–क्षणमें निर्विकल्पदशा होती है। ऐसा चौथे गुणस्थानवालेको नहीं होता। चौथेकी अपेक्षा पाँचवें गुणस्थानमें विशेष गति (शीघ्रता) होती है। चौथेमें उसके योग्य गति होती है। छठवें–सातवें गुणस्थानमें तो क्षण–क्षणमें–अंतर्मुहूर्तमें होती है। ऐसी तीव्र गतिसे चौथे गुणस्थानमें नहीं होती। वैसे तो उसके पुरुषार्थकी जैसी गति हो तदनुसार होती है, उसका कोई नियमित काल नहीं होता।

मुमुक्षु :—कोई जीव विशेष पुरुषार्थी हो तो?

बहेनश्री :—कोई जीव विशेष पुरुषार्थी हो तो उसकी निवृत्ति तथा अंतरपरिणतिकी–ज्ञायककी उग्रताके अनुसार होती है। परिणति हो तो उसको विशेष गतिसे (शीघ्रतासे) होती है। इसप्रकार किसीको अमुक प्रकारसे और किसीको अमुक प्रकारसे होती है परन्तु

दर्शन प्रकाशक आत्मका, परका प्रकाशक ज्ञान है।
निज पर प्रकाशक आत्मा,+रे यह विरुद्ध विधान है ॥१६१॥

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ५-४५ से ६-०५ : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप
सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१५वीं बारका) सीडी प्रवचन
दोपहर : ३-१५ से ४-१५: श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन
दोपहर : ४-१५ से ४-४५ : श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि : ८-०० से ९-०० : श्री अष्टप्राभृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

❀ **ज्ञानवैभव-प्रकाशन वार्षिक दिन :** 'बहिनश्रीका ज्ञानवैभव' ग्रंथके प्रकाशनका वार्षिक दिन भाद्रपद कृष्णा-१४ ता. १-९-२०२४, रविवारके दिन है। यह दिन उनके उपकारोंके प्रति कृतज्ञता ज्ञापनार्थ, जिनेन्द्रपूजा-समारोह आदि विशेष कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

❀ मंगल पत्रिका लेखनविधि ❀

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका १११वाँ वार्षिक जन्मोत्सव ता. १९-८-२०२४ से २१-८-२०२४ तक श्री अखिल गुजरात-सौराष्ट्र भगवती महिला मंडल द्वारा मनाया जानेवाला है उस महोत्सवकी निमंत्रण पत्रिका लेखनविधि ता. २१-७-२०२४ रविवारके दिन सुवर्णपुरी (सोनगढ़)में विभिन्न मुमुक्षुमंडलोंके सदस्योंकी उपस्थितिमें सानंद संपन्न हुई। सुबह नंदीश्वर जिनालयमें अष्टाह्निका पूजन पूर्णाहूति पश्चात् सभी मुमुक्षु ब्र. कोकिलाबेन-रूपाबेनके निवासस्थान पर गये थे। ब्र. कोकिलाबेनके निवासस्थान पर पूज्य गुरुदेवश्री पूर्वभवमें विदेहक्षत्रमें राजकुमारके भवमें और पूज्य बहिनश्रीका जीव शेठ पुत्र थे, वहाँ विदेहक्षेत्रकी नौवलपुर नगरी, २२५ कमल सहित भगवानका विहार, स्वागत, कुंडलपुरमें भगवानका समवसरण, कुन्दकुन्दाचार्य, राजकुमार, देवकुमार दर्शन करते है वहाँसे देवकुमारके चरण भरतमें वढवाणधाममें, जन्मधाममें, जंबूवृक्ष परिवारकी रचना, मेरु पर्वत, पूज्य बहिनश्रीके विभिन्न चित्र, हस्ताक्षर आदिको सुंदर सजावट सह दर्शानेमें आया था। वहाँ भक्ति सह पत्रिकाकी अक्षत-पुष्पसे बधाई की गई। पश्चात् वहाँसे पत्रिकाको गाजे-बाजेके साथ भक्तिसह पत्रिकाको पूज्य बहिनश्रीके निवासस्थान होकर परमागममंदिरमें लाया गया। बादमें पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन हुआ। बादमें ट्रस्टीश्री तथा अन्य द्वारा प्रासंगिक घोषणाएँ की गई तथा महोत्सवके विशेष आकर्षण सम्बन्धित संक्षिप्तमें जानकारी दी गई। पश्चात् बहिनों द्वारा गरबा-भक्तिगीत प्रस्तुत किया गया। तत्पश्चात् अखिल गुजरात-सौराष्ट्र भगवती महिला मंडलकी ओरसे ब्र. कोकिलाबेन-रूपाबेन पत्रिकाका भाववाही वांचन किया गया। पश्चात् पत्रिका लेखन विधि भजनमंडलीके भक्तिमय वातावरणमें संपन्न हुई। इस प्रसंग पर परमागममंदिरको और पत्रिकाको विशेषरूपसे सजाया था। इस प्रसंग पर सोनगढ ट्रस्टके ट्रस्टीगण, विभिन्न महिला मंडलके सदस्य एवं अधिक संख्यामें मुमुक्षुगण पधारे थे।

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

प्रश्न–५७ : ध्यानदशाके समय आत्मामें किस-किस जातिकी पर्याय होती है ?

उत्तर : अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय दोनों होती है।

प्रश्न–५८ : अरूपी वस्तुको आकृति होती है ?

उत्तर : हाँ, प्रदेशत्वगुणके कारण प्रत्येक वस्तुको अपनी आकृति अवश्य होती है, उसे व्यंजनपर्याय कहा जाता है। आकृति रहित कोई वस्तु नहीं होती।

प्रश्न–५९ : धर्म-अधर्म-आकाश और काल—यह चार द्रव्यको स्वभावव्यंजनपर्याय है कि विभावव्यंजनपर्याय है ?

उत्तर : इन चारों द्रव्योंको हमेशा स्वभावव्यंजनपर्याय ही होती है, उसकी पर्यायमें कभी विकार नहीं होता, संसारी जीवको और स्कंधके परमाणुओंको ही विभावव्यंजनपर्याय होती है।

प्रश्न–६० : अगुरुलघुगुण प्रतिजीवी है या अनुजीवी ?

उत्तर : अगुरुलघुत्वगुण दो प्रकारका है, उसमें जो सामान्य अगुरुलघुगुण है वह अनुजीवी है और जो जीवका विशेष अगुरुलघुगुण है वह प्रतिजीवी है।

प्रश्न–६१ : दोनों अगुरुलघुगुणमें अभावसूचक 'अ' आता है फिर भी दोनोंमें भेद क्यों ?

उत्तर : सामान्य अगुरुलघुगुण तो सभी वस्तुओंमें त्रिकाल है, वह गुण कोई दूसरे अभावकी अपेक्षा रखता नहीं है इसलिये वह अनुजीवी है और विशेष अगुरुलघुगुण तो गोत्रकर्मका अभाव होने पर सिद्धदशा प्रकट होती है—कर्मके अभावकी अपेक्षा रखता होनेसे वह प्रतिजीवी गुण है। (जिसमें 'अ' आये उसे प्रतिजीवी गुण कहना ऐसा कोई नियम नहीं है।)

प्रश्न–६२ : मन ज्ञान करते अटकाता है या मदद करता है ?

उत्तर : मन तो जड़ है, वह ज्ञानसे पृथक् है अतः वह ज्ञान करनेमें मदद भी नहीं करता और अटकाता भी नहीं है।

प्रश्न–६३ : 'आत्मा देह छोड़कर चला गया'—तब यहाँसे छह द्रव्योंमेंसे कितने द्रव्य गये ?

उत्तर : एक तो जीव और उसके साथ कार्मण और तैजस शरीरके रजकण अर्थात् कि जीव और पुद्गल द्रव्य गये। जीव और पुद्गल द्रव्यके अतिरिक्त चारों द्रव्य तो हमेशा स्थिर है, उनमें कभी क्षेत्रांतर नहीं होता।

प्रश्न–६४ : 'शरीरको छोड़कर जीवके प्रदेशोंका बाहर फैलना उसे समुद्घात कहते हैं'—यह व्याख्या यथार्थ है ?

उत्तर : नहीं, यह व्याख्या यथार्थ नहीं है। शरीरको छोड़कर सभी आत्मप्रदेश बाहर निकल जाये उसे मरण कहते हैं। समुद्घातमें तो मूल शरीरको छोड़े बिना आत्मप्रदेश बाहर फैलते हैं।

(१३२) छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

(नीचे दिये गये प्रश्नोंके उत्तर छहढालाकी चौथी ढालमेंसे मिलेंगे।)

(१) जगतमें सर्वोत्कृष्ट पुण्यके मालिक ..... है।

(२) आत्मा ..... है।

(३) ..... में ज्ञानादि अनंत गुण है।

(४) जैन तत्त्वके अभ्यासका फल ..... का अनुभव करना वह है।

(५) जैन तत्त्व ..... से भिन्न स्वयंका ..... तत्त्व दिखलाता है।

(६) ..... से भिन्न ..... से भिन्न, शुद्ध ..... स्वरूप जीव है।

(७) अजीवको स्वयंसे ..... जाने तो ..... तत्त्वकी श्रद्धा की ऐसा कहा जाता है।

(८) ..... की सन्मुखतासे ..... तत्त्व श्रद्धा होती है।

(९) आत्महितकी ..... विद्या वह जीवका वास्तविक वैभव है।

(१०) जिनवाणी मधुर ..... जैसी, ... का स्वरूप बतलानेवाली है।

(११) जैन शासनका वास्तविक लाभ ..... को पहिचानकर ..... का अंत कर लेना।

(१२) ..... रूप परिणमित जीव वह हलन-चलनरूप ..... है।

(१३) सम्यक्ज्ञान ..... का स्वरूप होनेसे हमेशा ..... रहनेवाला है।

(१४) ..... की लगनीमें बाह्य प्रतिकूलताका असर नहीं है।

(१५) ज्ञानी शरीरको .....के अनुसार उसे ..... से पृथक् जानता है।

(१६) ..... और ..... का भेदज्ञान करना वह सत्य विवेक है।

(१७) स्वयंके ..... अनंत गुण-पर्याय वह ज्ञानीका ..... है।

(१८) आत्माका ..... ज्ञान हमेशा शांति देता है।

(१९) ..... आनंदरूप है ..... में रागका कोई अंशको मिलाता नहीं है।

(२०) ..... होने पर भी आत्मा ..... के अनुभवमें आता है।

बालकोंके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

(१) तीर्थंकर
(२) स्वयंसिद्ध
(३) आत्मा
(४) आत्मा
(५) पर, चैतन्य
(६) पर, राग, उपयोग
(७) भिन्न, अजीव
(८) शुद्धात्मा, सत्य
(९) अध्यात्म
(१०) अमृत, आत्मा
(११) आत्मा, भव
(१२) रत्नत्रय, तीर्थ
(१३) आत्मा, अविचल
(१४) आत्मा
(१५) वस्त्र, आत्मा
(१६) स्व, पर
(१७) शुद्ध, साम्राज्य
(१८) सम्यक्
(१९) सम्यक्ज्ञान, उपयोग
(२०) अरूपी, ज्ञान

आत्मधर्म सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

आप सभी हमारे मुमुक्षु हैं। हिन्दी आत्मधर्म आपको बहुत समयसे भेज रहे है। अब ट्रस्टने निर्णय लिया है कि जो ग्राहक १५ वर्षसे अधिक समयसे है उनको अब आगामी अंक भेजना बंद किया जायेगा। यदि जिन्हें आत्मधर्म मासिक पुनः चालु करवाना चाहते हो तो वे आत्मधर्म कार्यालयको एक संमतिपत्र भेजे जिससे आपको पुनः ५ वर्षके लिये अंक रीन्यु किया जायेगा। इसलिये आप अपना उचित उत्तर (संमति पत्र) भेजे उसके अनुसार आपको अंक भेजा जायेगा।

इसके अलावा यदि आप फीझीकल कोपी नहीं चाहते हो और **email** अथवा **whatsapp** पर **PDF** चाहते हो तो उस अनुसार आपको भेजनेमें आयेगा।

आप अपना संमतिपत्र : आत्मधर्म कार्यालय अथवा मेल अथवा वोटसेप पर भेज सकते है।

आत्मधर्म कार्यालय,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (जि. भावनगर)

email contact@kanjiswami.org
Whatsapp No 9276867578

सम्मति पत्र

प्रति श्री आत्मधर्म कार्यालय

मैं .....

सूचित करता हूं कि आपके द्वारा भेजे जानेवाला आत्मधर्म अंकका हम नियमित पठन एवं स्वाध्याय करते है। तथा किसी भी प्रकारका अविनय अशातना हमारे द्वारा नहीं हो रही है। इसलिये हमारा आत्मधर्म अंक रीन्यु करनेकी विनती करते है।

आत्मधर्म फिझीकल /**email** / **whatsapp.....** ..... द्वारा हमें भेज देंगे।

ग्राहक नंबर : .....

नाम : .....

पता : .....

.....

.....

संपर्क नंबर : .....

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

● आत्मा शाश्वत है, अतः उसकी शक्तियाँ भी शाश्वत हैं - उनकी ओर देखनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। आत्मतत्त्व अनन्त-शक्तियोंका पिण्ड है। जिसे उसका आदर नहीं है परन्तु पुण्य-पापका आदर है, वह संसारमें रुलता है। अंतरका विश्वास न होने पर बाह्य-विश्वास ही प्रसिद्ध रहता है। जलके साथ अमुक प्रकारकी गोली लेनेसे दस्त होनेका विश्वास तो होता है, परन्तु अज्ञानीको यह विश्वास नहीं होता कि आत्मा अनन्त-शक्तिवान है।६४६।

● जिन्होंने पुरुषार्थ द्वारा मोहका नाश किया है अर्थात् परकी सावधानी छोड़ दी है व ज्ञानमात्र निज-स्वभावकी सावधानी रखते हैं - वे सिद्धदशाको पाते हैं। ज्ञानमात्रके सिवाय अन्य किसी उपायसे कल्याण नहीं होता।६४७।

● जो आत्मसन्मुख होते हैं, वे विकारसे विमुख हुए बिना नहीं रहते। ''मैं निर्विकार हूँ'' यदि ऐसा कहे, पर विकारसे विमुख न हो तो (वह) मात्र धारणा है। रागसे, पुण्यसे अथवा परसे चैतन्यकी एकता नहीं - ऐसा पृथक्तारूप-भेदज्ञान तो न करे व ज्ञानमय-वस्तुका ग्रहण हुआ बतलाए तो, वह बात मिथ्या है। जिसने स्वभावकी दृष्टि की, उसके विभावका अभाव होना ही चाहिए। यदि विभावका अभाव न हुआ तो स्वभाव-दृष्टि ही नहीं हुयी।६४८।

● दया-दान-भक्ति-पौषध-प्रतिक्रमण-सामायिक आदि क्रियाकाण्डमें कुशलता, रूखा आहार लेना इत्यादि सभी क्रियाएँ - शुभ-राग व परकी हैं। जो केवल शुभ-रागकी क्रियाओंमें ही सन्तुष्ट हो जाते हैं कि ''मैंने बहुत किया'' - उन्हें इन पुण्य-पापसे रहित निष्कर्म-भूमिकाकी प्राप्ति नहीं होती - ज्ञानस्वभावी आत्माकी दृष्टि नहीं होती। कोई ऐसा कहे कि रागको घटाया है, परन्तु राग-रहित चैतन्य कौन है? - इसका पता ही न हो, तो उसे भी आत्माके धर्मकी प्राप्ति नहीं होती। जो आत्माको समझे ही नहीं व केवल राग-घटाए, उसे भी धर्म नहीं होता; और मात्र ज्ञानकी बातें करे व रागका अभाव न करे तो उसे भी आत्म-प्राप्ति नहीं होती - धर्म प्रकट नहीं होता।६४९।

● जो क्षण-क्षणमें अनुकूलता-प्रतिकूलताके संयोगोंमें हर्ष-शोकका वेदन किया करते हैं, उनको कषाय-मंदता भी नहीं। उनको तो आत्मा कैसा है - ऐसी जिज्ञासा होनेका भी अवकाश नहीं है; क्योंकि उनकी क्षणिककी रुचि तो छूटती नहीं। जिसे राग-घटनेके प्रसंगकी ही खबर नहीं, उसको कभी भी रागका अभाव नहीं होता। ६५०।

३६
आत्मधर्म
अगस्त-२०२४
अंक-१२ ● वर्ष-१८

Posted at Songadh PO
Publish on 5-08-2024
Posted on 5-08-2024

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

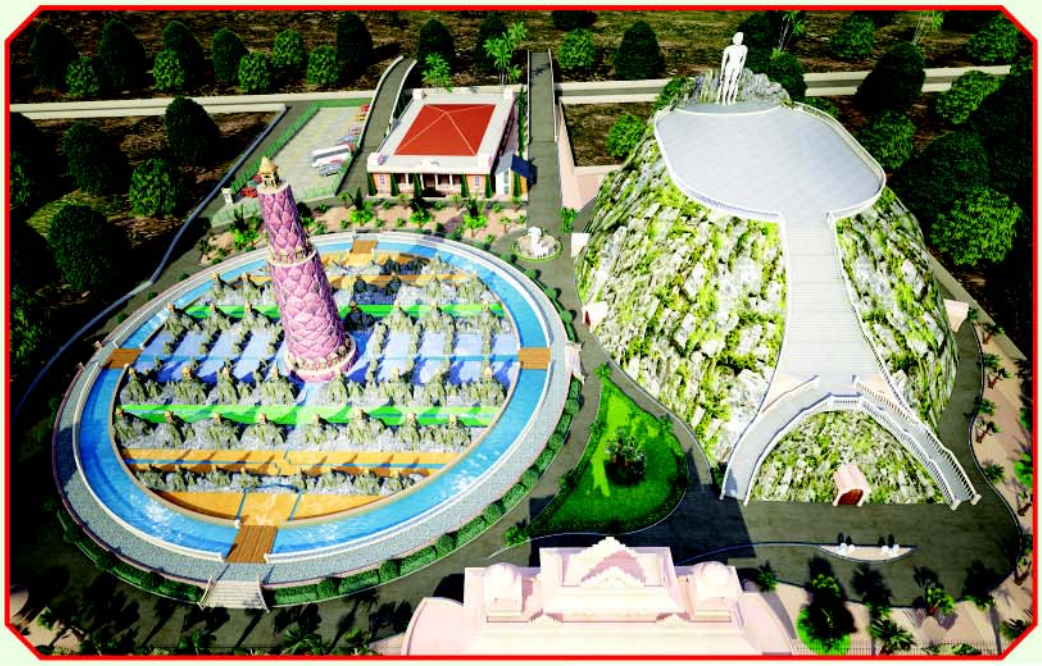

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org